भारतीय संस्कृति में षोड्श संस्कारों की वैज्ञानिकता

डॉ. प्रज्ञा पारीक

शोध सारांश

भारतीय मनीषा ने मनुष्य व समाज के उत्थान के निमित्त षोड्श संस्कारों की विधा का सृजन किया है। संस्कारों के विभिन्न क्रमिक रूप मनुष्य के जन्म से पहले ही प्रारम्भ होकर उसकी मृत्यु के पश्चात् तक निरन्तर बने रहते है। संस्कार व्यक्ति की अन्तःश्चेतना को संस्कारित भावभूमि प्रदान करने वाली वैज्ञानिक पद्वति है। संस्कारों की मनोवैज्ञानिक एवं परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से संकल्प शक्ति को प्रभावित करके सुसमृद्व चेतना द्वारा अल्पप्राण चेतना को वशीकृत करके सकारात्मक रूप से प्रेरित व निर्देशित किया जाता है। वर्तमान आवश्यकता है कि संस्कारों की महत्ता को पुर्नस्थापित कर पुनः देव मानव गढ़ने की संस्कार विधा का विकास किया जाय।

संकेताक्षर : संस्कार, मनोवैज्ञानिक अवधारणा, षोड्श संस्कारों की वैज्ञानिकता

परिचय

जन्मना जायते शूद्र संस्कारेण द्विज उच्येत।

यह पूर्णतः सत्य है कि मनुष्य का जन्म तो सहज है परन्तु मनुष्यता उसे कठिन प्रयत्न से प्राप्त करनी पडती है। वस्तुतः मनुष्य दो वर्गो के बीच की कड़ी है यदि वह घृणित, दानवी, तुच्छ मानवता को लज्जित करने वाले कर्म करता है तो वह उठा हुआ पशु है। लेकिन इसके विपरित यदि वह सत्कर्मो में प्रवृत्त हो उदार, उच्च आदर्शो–मूल्यों वाला दैवीय जीवन जी कर मानवता को धन्य करता है तो वह गिरा हुआ देवता है। उठे हुए पशु और गिरे हुए देवता के बीच मनुष्य है, क्रमशः उसके दानवी एवं दैवीय कर्म उसे पशु अथवा देवता की उपमा प्रदान करते है और मनुष्य के कर्मो को निर्धारित करते है उसके संस्कार।[1] प्राचीन भारतीय मनीषा की सद्इच्छा थी कि भारत का बच्चा–बच्चा राम हो और हर स्त्री में सीता के आदर्श समाए हो, इसलिए संस्कार परम्परा को भारतीय परिवारों की एक अनिवार्यता बनाया जो परिवारों में सुसंस्कारिता की स्थापना करती है। ऐसे संस्कारित परिवारों में से जब राष्ट्र का भविष्य युवा पीढी के रूप में निःसृत होता था तो भारत विश्व परिदृश्य में जगद्गुरू, सोने की चिडिया, सर्वोत्तम मार्ग दृष्टा कहलाता था।

मानव जीवन में संस्कारों का महत्व

'संस्कारशौचेन परमपुनीते।

शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः।।[2]

मानव को सही मानव या शान्त, सुशिक्षित, शीलवान एवं सभ्य बनाने में संस्कारों की प्रमुख भूमिका होती है। शारीरिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पुष्ट एवं परिपूर्ण बनाने तथा मानवता सिखाने के सशक्त, सार्थक एवं समर्थ साधन या माध्यम संस्कार ही होते हैं।

संस्कार का एक अर्थ व्यक्ति को ज्ञान की प्राप्ति होना है, दूसरा अर्थ विक्षेप को मिटाना है, तीसरा अर्थ मन की वासनाओं को मिटाना और चौथा अर्थ जीवन की दुश्चरित्रता को मिटा देना है।

साधन क्रम में संस्कार की प्रक्रिया इस प्रकार है :

द्रव्य–शुद्धि –) भोगशुद्धि –) क्रियाशुद्धि –) वाक्–शुद्धि

इसका मतलब यह है कि हमारे घर में जो धन आवे, वह शुद्ध हो। हम जो अपनी इन्द्रियों के द्वारा भोग करें, वह शुद्ध हो। हम जो कर्म करें, वह शुद्ध हो। हम जो बोलें, वह भी शुद्ध हो। [3]

संस्कार–विधान का व्यक्ति की अन्तश्चेतना पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। इससे मानव का सुसंस्कारी बनना सरल

हो जाता है। 'संस्कार मात्र कर्मकाण्ड नहीं, आत्मनिर्माण के सशक्त माध्यम हैं। इनका मानवीय चेतना से गहरा सम्बन्ध है। संस्कार के माध्यम से शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक परिष्कार की प्रक्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं। संस्कारों के अनुष्ठान से व्यक्ति में दैवी गुणों का आविर्भाव हो जाता है।

आज सुसंस्कृत संस्कृति की आवश्यकता चारों ओर अनुभव की जा रही है। इटली के अंदर मेंडले नाम के विद्वान ने संस्कार शास्त्र पर आधारित शास्त्र की नींव डाली, जिसे 'यूजेनिक्स' कहा जाता है। इंग्लैण्ड के विद्वान सर फ्रानिक्स गाल्टन ने अपनी सम्पत्ति का बड़ा भाग लंदन विश्वविद्यालय को इस क्षेत्र में शोध हेतु दे दिया। यूजेनिक्स अथवा संस्कार शास्त्र क्षेत्र में शोध कर रहे विद्वानों का कहना है कि संतति को सुसंस्कारी एवं शालीन बनाने में प्रत्यक्ष उपदेशों, प्रशिक्षणों का कम, धार्मिक संस्कारों का अधिक योगदान होता है। वस्तुतः 'सुसंस्कार मनुष्य को पाप, अज्ञान और अधर्म से दूर रखकर उन्हें आचार–विचार, कर्त्तव्यनिष्ठा और ज्ञान–विज्ञान से संयुक्त करते हैं। इससे मनुष्य में सद्बुद्धि बनी रहती है और उसके हृदय में त्याग, संयम, प्रेम, उदारता, धर्मनिष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता आदि उच्च भावनाएँ आती हैं। इसी दैवी सम्पत्ति के फलस्वरूप वह जीवन में सच्चे सुख और शांति को पाता है। [4]

मानवजीवन के विकास के लिए संस्कार महत्वपूर्ण है। मनुष्य के शारीरिक मानसिक, आध्यात्मिक विकास के लिए गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त 16 संस्कारों का विधान प्राचीन महर्षियों ने किया था। [5] विभिन्न पापों से परिष्कार के लिए तथा शारीरिक मानसिक अभिवृद्धि के लिए संस्कारों का महत्व है। [6] संस्कारों से द्विज पापक्षय करते है और परिपुष्ट होते हैं। गर्भाधान, जातकर्म, चूड़ाकर्म, तथा उपनयनादि संस्कार से द्विजों के गर्भ तथा वीर्य सम्बन्धी दोष दूर होते हैं।

संस्कारों की वैज्ञानिक अवधारणा

किसी भी पद्धति की वैज्ञानिकता उसके प्राकृतिक नियमों के अनुकूलन तथा चिरन्तनता में निहित होती है। जीवन मूल्यों के स्थायित्व के लिये जहां उसे अनुभव से पुष्ट एवं तर्कों पर आधारित होना आवश्यक है, वहीं उसकी व्यापकता के लिये समष्टिगत सामाजिक चेतना तथा प्राकृतिक नियमों से उसका जुड़ाव भी आवश्यक है। भारतीय संस्कृति के नैरन्तर्य तथा विस्तार के पीछे इसकी पृष्ठभूमि और आधार–भूमि दोनों का ही योगदान है। इन सबके पीछे हैं भारतीय मनीषियों के चिन्तन की वैज्ञानिकता।

भारतीय जीवन में संस्कारों, कर्मकाण्ड, पूजापद्धति, तर्पण आदि जहां अभिन्न अंग के रूप में विद्यमान हैं, वहीं आज के भौतिक युग में इस पर गम्भीर प्रश्नचिह्न भी लगाये जाते रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में इनके शास्त्रीय और वैज्ञानिक पहलू को रखने के लिये विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। यहां भारतीय पूजा पद्धति, मांगलिक द्रव्यों के उपयोग, प्रतीक–चिह्नों, आचार–पद्धति, उपनयन, विवाह आदि संस्कारों की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला गया है। दैनन्दिन कृत्यों–सन्ध्यावन्दन, व्रत एवं पर्व के प्रति तपश्चर्यों एवं उपासना के पवित्र लक्ष्य के अतिरिक्त वैज्ञानिक दृष्टि भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जिस पर विषय के शीर्षस्थ विद्वानों ने अपने विचार सुसम्बद्ध एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रकट किये हैं। [7]

शब्द–शक्ति एवं स्वर–सामर्थ्य की वैज्ञानिकता अब प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुकी है। इसी के आधार पर मंत्रों के अनुप्रयोग एवं पराभौतिक प्रभावों को देखा गया है। इस विषय को प्रयोगों एवं विश्लेषणों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

आज का समाज विज्ञान की चकाचौंध से प्रभावित होकर प्राचीन आचार–विचार पर अत्यधिक तर्क करने लगा है। आधुनिक शिक्षा एवं संस्कारों ने और अधिक भ्रम उत्पन्न किया है, परन्तु धीरे–धीरे आज का विज्ञान तुलसी पत्र, हरिद्रा, दूर्वा और बिल्वपत्र आदि वस्तुओं का वैज्ञानिक स्वरूप प्रतिपादित करने लगा है। हस्त–पाद प्रक्षालन, नित्य स्नान, वस्त्रों की शुचिता तथा भोजन की पवित्रता को भी आज का सभ्य समाज स्वीकारने लगा है।

इस प्रकार अब आचार एवं विचार की शुद्धता मनुष्य की समृद्धि हेतु उपयोगी माना जाने लगा है। फिर भी कुछ ऐसे प्रश्न शेष रह जाते हैं जिनका समाधान आवश्यक है। उदाहरण के लिए यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर क्यों लपेटना चाहिये ? यह प्रश्न किसी के भी मन में उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। इसका उत्तर शरीर विज्ञान के माध्यम से

प्राप्त होता है। यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर इसलिए लपेटना चाहिए क्योंकि दाहिने कान से होकर ''लोहितिका'' नामक एक विशेष नाड़ी मनुष्य के मलमूत्र के द्वार तक पहुंचती है। यदि दक्षिण कान की इस नाड़ी को थोड़ा सा दबा दिया जाय तो व्यक्ति का मूत्रद्वार स्वतः ही खुल जाता है। इस नाड़ी का अण्डकोश से भी सीधा सम्बन्ध है।'' ''हार्निया'' नामक बीमारी की रोकथाम के लिए प्रामाणिक चिकित्सक उस नाड़ी की जगह सूची वेध (छिद्र) कर देते हैं। अतः वैज्ञानिक रीति से प्रमाणित है कि कान को जनेऊ द्वारा वेष्टित करने पर व्यक्ति की मूत्र–क्रिया स्पष्टता एवं सरलता के साथ आखिरी बूंद तक सुगमता से हो जाती है और मूत्र सम्बन्धी रोग नहीं होते हैं। वस्तुतः शोड्ष संस्कारों में वैज्ञानिकता सन्निहित है यथा–

गर्भाधान संस्कार की वैज्ञानिकता

षोड्श संस्कारों में सर्वप्रथम गर्भाधान संस्कार का विधान है, जिसका अर्थ यह है कि दम्पति अपनी प्रजनन प्रवृति से समाज को सूचित करते है। प्रजनन वैयक्तिक मनोरंजन नहीं, वरन् सामाजिक उतरदायित्व है। इसलिए समाज के विचारशील लोगों को निमंत्रित कर उनकी सहमति लेनी पडती है, यही गर्भाधान संस्कार है। पति–पत्नी एकान्त मिलन के साथ वासनात्मक मनोभाव न रखें, मन ही मन आदर्शवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहें तो उसकी मानसिक छाप बच्चे की मनोभूमि पर अंकित होगी। इसी प्रकार उस समय दोनों की मनोभूमि यदि आदर्शवादी मान्यताओं से भरी हुई हो, तो मदालसा, अर्जुन आदि की तरह मनचाहे स्तर के बालक उत्पन्न किए जा सकते है। वस्तुतः वह प्रजनन–विज्ञान का आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्थिति का मार्गदर्शन कराने वाला प्रशिक्षण ही था। [8] श्रेष्ठ गुणों वाली, स्वस्थ, ओजस्वी, चरित्रवान और यशस्वी संतान प्राप्ति के लिए विधि–विधान से किया गया संभोग ही गर्भाधान–संस्कार कहा जाता है।

पर्याप्त खोजों के बाद चिकित्साशास्त्र भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि गर्भाधान के समय स्त्री–पुरुष जिस भाव से भावित होते हैं, उसका प्रभाव उनके रज–वीर्य में भी पड़ता है। अतः उस रज–वीर्यजन्य संतान में माता–पिता के वे भाव स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं।

पुसंवन संस्कार की वैज्ञानिकता

पुसंवन संस्कार में किए जाने वाले कर्मकाण्ड अत्यन्त वैज्ञानिक प्रभाव वाले है यथा–पुसंवन संस्कार में औषधि अवघ्राण के लिए वट वृक्ष की जटाओं के मुलायम सिरों का छोटा टुकडा, गिलोय, पीपल की कोपल–मुलायम पत्ते लाकर रखे जाएँ। सबका थोडा–थोडा अंश पानी के साथ सिलपट पर पीसकर एक कटोरी में उसका घोल लिया जाता है। क्योकि वट वृक्ष, विशालता और दृढ़ता का प्रतीक है। गिलोय वृक्ष में ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति है। यह हानिकारक कीटाणुओं की नाशक है, शरीर में रोगाणुओं, अन्तःकरण के कुविचार–दुर्भावों, परिवार और समाज में व्याप्त दुष्टता–मूढ़ता आदि के निवारण की प्रेरणा देती है। पीपल–देव योनि का वृक्ष है। देवत्व के परमार्थ के संस्कार इसमें सन्निहित है। औषधि को सूघँने और पान करने का तात्पर्य श्रेष्ठ संस्कारों का वरण करने, उन्हें आत्मसात् करने की व्यवस्था बनाना है। ऐसे आहार तथा दिनचर्या का निर्धारण किया जाए। श्रेष्ठ पुरूषों के प्रसंगों के अध्ययन, श्रवण, चिन्तन द्वारा गर्भिणी अपने में, अपने गर्भ में श्रेष्ठ संस्कार पहुँचाए। [9]

यज्ञीय जीवन भारतीय संस्कृति की विशेष उपलब्धि है। जीवन का हर चरण एक आहुति है। कृत्य विशेष को यज्ञमय बनाने के लिए विशेष क्रम बनाने होते है। विशेष आहुति उसी बोध को जीवन्त बनाती है। यज्ञ में पोषक, सात्विक पदार्थ खीर की आहुति डाली जाती है। इसी प्रकार अन्तःकरण में दूध की तरह श्वेत, कलुषरहित भावों का संचार करें। दूध में घी समाया रहता है, अपने चिन्तन और आचरण में स्नेह समाया रहे। गर्भिणी स्वयं भी तथा परिवार के परिजन मिलकर गर्भस्थ शिशु के लिए ऐसा ही परमार्थपरक वातावरण बनाएँ। यज्ञ से बची हुई खीर गर्भिणी को सेवन के लिए दी जाती है। यज्ञ से संस्कारित अन्न ही मन में देवत्व की वृतियाँ पैदा करता है। गर्भिणी विशेष रूप से नित्य बलिवैश्य करके, यज्ञ का प्रसाद बनाकर ही भोजन ले। भोजन में सात्विक पदार्थ हो। उत्तेजक, पेट और वृतियों को खराब करने वाले पदार्थ न हो।[10]

नामकरण संस्कार की वैज्ञानिकता

नामकरण संस्कार के समय शिशु के अन्दर मौलिक कल्याणकारी प्रवृतियों, आकांक्षओं के स्थापन, जागरण के सूत्रों

पर विचार करते हुए उनके अनुरूप वातावरण बनाना चाहिए। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य को जिस तरह के नाम से पुकारा जाता है, उसे उसी प्रकार की अनुभूति होती रहती है। यदि किसी को कड़ेमल, घूरेमल, नकछिद्दा, नत्थों, घसीटा आदि नामों से पुकारा जायेगा, तो उसमें हीनता के भाव ही जागेंगे। नाम सार्थक बनाने की कई हलकी, अभिलाषाएँ मन में जगती रहती है। पुकारने वाले भी किसी के नाम के अनुरूप उसके व्यक्तित्व की हल्की या भारी कल्पना करते है। इसलिए नाम का अपना महत्व है। उसे सुन्दर ही चुना और रखा जाए। शिशु के विकास के लिए जितना आवश्यक स्नेह–दुलार है, उतना ही आवश्यक है, उसे समयानुकूल उद्बोधन देना।[11]

अन्नप्राशन संस्कार की वैज्ञानिकता

''जैसा अन्न–वैसा मन'' की उक्ति सर्वविदित है। ''आहार शुद्वौ सत्त्वशुद्वि:''[12] का शास्त्र वचन भी विज्ञजन जानते है। इसलिए अन्न को संस्कारित करके देना आवश्यक है। यज्ञीय भावना द्वारा उसके संस्कारों का शोधन नवनीकरण सम्भव है, इसलिए अन्नप्राशन यज्ञावशिष्ट अन्न से कराया जाता है। बालकों के लिए सुस्वादु एवं स्वास्थ्यवर्धक आहार की तरह ही सुसंस्कारवान् अन्न जुटाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस तथ्य को बालक के मुख में सर्वप्रथम अन्नग्रास देते हुए समझाया जाता है। अपनी कमाई में से प्रथम सामाजिक उत्कर्ष की आवश्यकता पूरी की जानी चाहिए। खीर खिलाने में इस तथ्य की ओर प्रत्येक अभिभावक का ध्यान आकर्षित किया जाता है कि वे अधिक मात्रा व अनुपयुक्त भोजन के खतरे को समझें और बच्चे को कुछ भी खिलाते समय इस सम्बन्ध में पूरी–पूरी सतर्कता बरतें।

मुण्डन संस्कार की वैज्ञानिकता

मुण्डन संस्कार इसलिए महत्वपूर्ण है कि मस्तिष्कीय विकास एवं सुरक्षा पर इस समय विशेष विचार किया जाता है और वह कार्यक्रम शिशु पोषण में सम्मिलित किया जाता है, जिससे उसका मानसिक विकास व्यवस्थित रूप से आरम्भ हो जाए, चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते रहने के कारण मनुष्य कितने ही ऐसे पाशविक संस्कार, विचार, मनोभाव अपने भीतर धारण किये रहता है, जो मानव जीवन में अनुपयुक्त एवं अवांछनीय होते है। इन्हें हटाने और उस स्थान पर मानवतावादी आदर्शो को प्रतिष्ठापित किये जाने का कार्य इतना महान एवं आवश्यक है कि वह न हो सका, तो यही कहना होगा कि आकृति मात्र मनुष्य की हुई–प्रवृति तो पशु की बनी रही।[13]

विद्यारम्भ संस्कार

प्रत्येक अभिभावक का यह परम पुनीत धर्म कर्त्तव्य है कि बालक को जन्म देने के साथ–साथ आई हुई जिम्मेदारियों में से भोजन, वस्त्र आदि की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर उसकी शिक्षा–दीक्षा का प्रबन्ध करे। प्रत्येक अभिभावक को अपने हर बच्चे की शिक्षा का चाहे व लडकी हो या लडका, अपनी सामर्थ्यानुसार पूरा–पूरा प्रबन्ध करना होता है। विद्यारम्भ संस्कार द्वारा बालक–बालिकाओं में उन मूल संस्कारों की स्थापना का प्रयास किया जाता है, जिन के आधार पर उसकी शिक्षा मात्र ज्ञान न रहकर जीवन निर्माण करने वाली हितकारी विद्या के रूप में विकसित हो सके। समारोह द्वारा बालक के मन में ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्साह पैदा किया जाता है। उत्साहकारी मनोभूमि में देवराधन तथा यज्ञ के संयोग से वांछित ज्ञानपरक संस्कारों का बीजारोपण भी संभव हो जाता है।[14]

कर्णभेद संस्कार की वैज्ञानिकता

इसे स्त्री–पुरुषों में पूर्ण स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की प्राप्ति के उद्देश्य से कराया जाता है। मान्यता यह भी है कि सूर्य की किरणें कानों के छिद्र से प्रवेश पाकर बालक–बालिका को तेज संपन्न बनाती हैं। बालिकाओं के आभूषण धारण हेतु तथा रोगों से बचाव हेतु यह सस्कार आधुनिक एक्युपंचर पद्धति के अनुरूप एक सशक्त माध्यम भी है। हमारे शास्त्रों में कर्णवेध रहित पुरुष को श्राद्ध का अधिकारी नहीं माना गया है। मस्तिष्क के दोनों भागों को विद्युत के प्रभावों से प्रभावशील बनाने के लिए नाक और कान में छिद्र करके सोना पहनना लाभकारी माना गया है। कानों में सोने की बलियां या झुमके आदि पहनने से स्त्रियों में मासिकधर्म नियमित रहता है, इससे हिस्टीरिया रोग में भी लाभ मिलता है।[15]

यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार की वैज्ञानिकता

शिखा और सूत्र भारतीय संस्कृति के दो सर्वमान्य प्रतीक है। शिखा भारतीय संस्कृति के प्रतीक आस्था की प्रतीक है, जो मुंडन संस्कार के समय स्थापित की जाती है। यज्ञोपवीत सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन के संकल्प का प्रतीक है।

यज्ञोपवीत को व्रत बन्ध कहते है।[16] व्रतों से बँधे बिना मनुष्य का उत्थान सम्भव नही। यज्ञोपवीत को व्रतशीलता का प्रतीक मानते है। इसलिए इसे सूत्र भी कहते है। यज्ञोपवीत के नौ धागे नौ गुणों के प्रतीक है। प्रत्येक धारण करने वाले को इन गुणों को अपने में बढाने का निरन्तर ध्यान बना रहे, यह स्मरण यज्ञोपवीत के धागे दिलाते रहते है। यज्ञोपवीत के धागों में नीति का सम्पूर्ण सार सन्निहित कर दिया गया है। जैसे कागज और स्याही के सहारे किसी नगण्य से पत्र या तुच्छ सी लगने वाली पुस्तक में अत्यन्त महत्वपूर्ण ज्ञान–विज्ञान भर दिया जाता है, उसी प्रकार सूत्र के इन नौ धागों में जीवन–विकास का सारा मार्गदर्शन समाविष्ट कर दिया गया है। इन धागों को कन्धे पर, कलेजे पर, ह्रदय पर, पीठ पर प्रतिष्ठित करने का प्रयोजन यह है कि सन्निहित शिक्षा को यज्ञोपवीत के धागे स्मरण कराते रहें, ताकि उन्हें जीवन–व्यवहार में उतारा जा सके।[17]

समावर्तन संस्कार की वैज्ञानिकता

ब्रह्मचर्यव्रत के समापन व विद्यार्थी जीवन के अंत के सूचक के रूप में समावर्तन (उपदेश)–संस्कार किया जाता है, जो साधारणतया 25 वर्ष की आयु में होता है। इस संस्कार के माध्यम से गुरुशिष्य को इंद्रिय निग्रह–दान, दया और मानवकल्याण की शिक्षा देता है तथा गृहस्थ–आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान करते थे। वह स्नातक होकर नम्र, शक्तिमान् और पिंगल दीप्तिमान् बनकर पृथ्वी पर सुशोभित होता है।[18]

विवाह संस्कार की वैज्ञानिकता

विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है। दो प्राणी अपने अलग–अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते है। स्त्री और पुरूष दोनों में परमात्मा ने कुछ विशेषताएँ और कुछ अपूर्णताएँ दे रखी हैं विवाह सम्मिलन से एक–दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी विशेषताओं से पूर्ण करते है, इससे समग्र व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए विवाह को समान्यतया मानव जीवन की एक आवश्यकता माना गया है। एक–दूसरे को अपनी योग्यताओं और भावनाओं का लाभ पहुँचाते हुए गाड़ी में लगे हुए दो पहियों की तरह प्रगति–पथ पर अग्रसर होते जाना विवाह का उद्देश्य है। वासना का दाम्पत्य–जीवन में अत्यन्त तुच्छ और गौण स्थान है, प्रधानतः दो आत्माओं के मिलने से उत्पन्न होने वाली उस महती शक्ति का निर्माण करना है, जो दानों के लौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन के विकास में सहायक सिद्व हो सके।[19]

अन्त्येष्टि संस्कार की वैज्ञानिकता

भारतीय संस्कृति यज्ञीय आदर्शो की संस्कृति है। जिन्दगी जीने का सही तरीका यह है कि उसे यज्ञीय आदर्शो के अनुरूप जिया जाए। उसका जब अवसान हो, तो भी उसे यज्ञ भगवान् की परम–पवित्र गोदी में ही सुला दिया जाए, यह उचित है। जीवन की समाप्ति यज्ञ आयोजन में ही होनी चाहिए। मानव वैभव की समस्त विभूतियों को विश्वमंगल के लिए बिखेरते रहा जाए, यही तात्विक यज्ञ है।

मनुष्य शरीर में से प्राण निकल जाने पर उसका क्या किया जाए? उसका उत्तर देर तक सोचने के बाद ऋषियों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि नर–तन का प्रयोजन किसी के लिए उत्सर्ग होने में सिद्व होता है। इसका एक वृहत् प्रदर्शन करते हुए मृत शरीर की अन्त्येष्टि की जाए। सभी स्वजन–सम्बन्धी, मित्र–परिचित जो अन्तिम विदाई देने आएँ, उन्हें इस जीवनोद्देश्य को समझने का अधिक स्पष्ट अवसर मिले, इसलिए यज्ञ का एक विशाल आयोजन करते हुए, उसी में मृतक का शरीर होम दिया जाता है। मृतक के स्वजनों को शोक होना स्वाभाविक है। इस शोक प्रवाह को यज्ञ आयोजन की व्यवस्था में मोड़ दिया जाए और तत्सम्बन्धित छोटे–बड़े कर्मकाण्डो में लगा दिया जाए, तो उनका चित्त बहलता है और शोक–सन्ताप को हलका करने का अवसर मिलता है।[20]

निष्कर्ष

संस्कार दोष परिमार्जन हेतु एवं व्यक्ति के गुणों में आधान के लिए अपरिहार्य है। जिस प्रकार मिट्टी को घड़े का सौन्दर्य और स्वर्ण को नाना प्रकार के आभूषणों का रूप सौन्दर्य तत्सम्बन्धित संस्कार प्रदान करते है उसी प्रकार मानव को उसकी वाणी, व्यवहार, अनुशासन, चिन्तन व शील आदि का सौन्दर्य षोड्श संस्कार प्रदान करते है। सम्पूर्ण संस्कार प्रक्रिया वैज्ञानिक रूप से व्यक्ति के अन्दर सद्गुणों का विकास कर उसे अपने जीवन में दोषों का परिहार व परिष्कार कर पाने में समर्थ बनाती है।

(सहायक आचार्य)
बाबा श्याम ऋषि संस्कृति पी.जी. महिला महाविद्यालय,
खाटूश्यामजी, सीकर (राज)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुष्य गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु : श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा, पृष्ठ 2।
2. व्यास स्मृति, 12.15–16
3. पवित्र कुमार शर्मा : संस्कार अनुशीलन, हंसा प्रकाशन, जयपुर, पृ. 11
4. षोड्श संस्कार पद्वति–मानव जीवन में संस्कारों का महत्व, पृ. 16–17
5. वैदिकै कर्मभिः.....प्रेत्य चेह च, मनुस्मृति 2.26
6. गार्भे र्होमैर्जाति.....द्विजन्मनामपमृज्यते, मनुस्मृति 2.27
7. वायुनन्दन पाण्डेय : भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता–संस्कारों की वैज्ञानिक उपयोगिता, पृ. 37–39
8. श्रीराम शर्मा आचार्य : षोड्श संस्कार विवेचन, युग निर्माण प्रेस, मथुरा, पृ. 1.26
9. श्रीराम शर्मा आचार्य : कर्मकाण्ड भास्कर–पुंसवन संस्कार, युग निर्माण प्रेस, मथुरा, पृ. 137–138
10. श्रीराम शर्मा आचार्य : षोड्श संस्कार विवेचन, युग निर्माण प्रेस, मथुरा, पृ. 234
11. श्रीराम शर्मा आचार्य : कर्मकाण्ड भास्कर–नामकरण संस्कार, युग निर्माण प्रेस, मथुरा, पृ. 144
12. छंदोग्य उपनिषद, 6.4.12
13. श्रीराम शर्मा आचार्य : षोड्श संस्कार विवेचन, पृ. 3.43
14. श्रीराम शर्मा आचार्य : कर्मकाण्ड भास्कर–विद्यारम्भ संस्कार, युग निर्माण प्रेस, मथुरा, पृ. 174
15. प्रकाश चन्द्र गंगराडे : हिन्दुओं के रीति–रिवाज तथा मान्यताएँ, कर्णवेध संस्कार संस्कार क्यों?, हिन्दूलॉजी बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 45
16. ब्रतेन ब्रहम्चर्येण.....क्रियते ये सः, मनुस्मृति 2.13
17. श्रीराम शर्मा आचार्य : षोड्श संस्कार विवेचन, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. 2.33
18. श्रीराम शर्मा आचार्य : संस्कारों की पुण्य परम्परा, युग निर्माण प्रेस, मथुरा, पृ. 21–22
19. यू.आर.अनन्तमुर्ति : संस्कार, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई छिल्ली, पृ. 111–112
20. डॉ. फणीन्द्र कुमार मिश्र : भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता–अन्त्येष्टि कर्म एक वैज्ञानिक अध्ययन, पृ. 197–198